# एड्स का विज्ञान और राजनीति

पी. बालाराम

*"एड्स का कारण स्पष्ट करने में एच.आई.वी. (मानव प्रतिरक्षा-अभाव वायरस) की पहचान एक निर्णायक कदम था। मगर जैसा कि राबर्ट कॉच ने एक सदी पहले कहा था, यह दर्शाना काफी कठिन काम है कि कोई संक्रामक जीव ही उस रोग का कारक है। यह प्रक्रिया तब और भी कठिन हो जाती है जब संक्रामक जीव के शरीर में प्रवेश के बाद रोग के लक्षण उभरने में महीनों या बरसों लग जाते हैं। एड्स की यही स्थिति है।"*

*- एस. बी. प्रुसिनर, साइंस*

चिकित्सा साहित्य में एड्स का प्रवेश 1981 में हुआ था। इसका प्रथम प्रकरण यूनाइटेड स्टेट्स में समलैंगिक पुरुषों में प्रतिरक्षा अभाव के विवरण के रूप में सामने आया था। इसके दो साल बाद 1983 में इसका कारक मानव प्रतिरक्षा-अभाव वायरस पहचान लिया गया था।

यह एक रिट्रोवायरस है और इसे पहचानने का श्रेय पेरिस के पाश्चर इंस्टीट्यूट के लुक मोन्टेनियर और उनके साथियों तथा यू.एस.ए. के नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ हेल्थ के रॉबर्ट गैलो व उनके साथियों को जाता है। विश्व एड्स दिवस के मौके पर, 1997 के नोबल विजेता स्टेनले प्रुसिनर ने कहा कि एड्स के कारण की खोज 'एक महान वैज्ञानिक खोज' थी। किन्तु इसी के साथ प्रुसिनर ने आगे कहा - "मुझे इस बात पर हैरानी है कि इस घातक बीमारी के बारे में नया ज्ञान अर्जित करने के हर चरण पर मोन्टेनियर और गैलो के बीच मनमुटाव पैदा होता रहा।" सुलह के प्रयास में प्रुसिनर और 'साइंस' पत्रिका के संपादकों ने पत्रिका के 29 नवंबर 2002 के अंक में तीन आलेख एक साथ प्रकाशित किए। पहले आलेख के लेखक मोन्टेनियर हैं और इसका सम्बंध 'एच.आई.वी. की खोज के इतिहास' से है। मगर इस आलेख में एक गौरतलब बात कही गई हैं: "हम आज भी नहीं जानते कि एड्स की महामारी की उत्पत्ति क्या है; एच.आई.वी. के अलावा कौन-से कारक हैं जो प्रतिरक्षा तंत्र को धीरे-धीरे नष्ट कर देते हैं... एड्स की प्रगति और वायरस के प्रसार में सह-कारकों का क्या महत्व है; और एच.आई.वी. के पास ऐसा कौन-सा (जैविक) खज़ाना है जो तीन दवाओं वाले उपचार का प्रतिरोध करता है।"

अगले आलेख में गैलो 'एच.आई.वी./एड्स के प्रारंभिक दौर' की बातें करते हैं। वे बताते हैं कि कैसे इस दौर में कई कैंसर सम्बंधी शोधकर्ताओं ने एड्स के क्षेत्र में छलांग लगा दी थी। और अंतिम आलेख अत्यंत डरावने दावे के साथ शुरू होता है : "करीब 7 करोड़ लोग एच.आई.वी. संक्रमित हैं और 2 करोड़ से ज़्यादा लोग जान से हाथ धो चुके हैं। इन तथ्यों के मद्देनज़र एड्स चिकित्सा के इतिहास की एक विश्वव्यापी महामारी है।" एड्स वायरस के खोजकर्ताओं ने निष्कर्ष रूप में विकासशील देशों के लिए कई बातें कही हैं :

"विकासशील देशों की सरकारों में ज़बर्दस्त राजनैतिक इच्छाशक्ति होनी चाहिए और विकसित देशों से वित्तीय मदद मिलनी चाहिए। यह मदद राष्ट्र संघ के संगठनों, जैसे विश्व स्वास्थ्य संगठन या युनेस्को के ज़रिए यू.एन.एड्स के समन्वयन में दी जानी चाहिए। यह भी ज़रूरी है कि विकासशील देश स्वयं भी वित्तीय रूप से भागीदार हों। हमारा सुझाव है कि एड्स प्रोजेक्ट के लिए विकासशील देशों द्वारा दी जाने वाली रकम को उनकी विकसित देशों के प्रति देनदारियों में से कम कर दिया जाना चाहिए।"

प्रुसिनर ने इन आलेखों के परिचय में लिखा है कि

मोन्टेनियर और गैलो को 'सह-खोजकर्ता' माना जाना "एक राजनैतिक फैसला था... ताकि एच.आई.वी. हेतु रक्त परीक्षण सम्बंधी पेटेंट अधिकारों का विवाद सुलझ जाए।" तो ऐसा लगता है कि प्रुसिनर और साइन्स पत्रिका ने मिलकर प्रथम एड्स युद्ध का तो पटाक्षेप कर दिया है।

जो संक्रामक बीमारी सैन फ्रांसिस्को और न्यूयॉर्क के अस्पतालों में सामने आई थी, वह दो दशकों की अवधि में तीसरी दुनिया पर इतना बड़ा बोझ कैसे बन गई? एच.आई.वी. की पहचान के ठीक बीस वर्षों बाद नेचर मेडिसिन पत्रिका ने अपने जुलाई 2003 के अंक में एड्स अनुसंधान की वर्तमान स्थिति का लेखा जोखा पेश किया है। एन्थनी फोसी बताते हैं कि "एच.आई.वी. और एड्स सम्बंधी शोध समुदाय का आउटपुट काफी अधिक रहा है - एच.आई.वी. और एड्स से सम्बंधित सवा लाख से ज़्यादा शोधपत्र पब-मेडिसिन डैटाबेस में सूचीबद्ध हैं।"

जैव चिकित्सा अनुसंधान की इस असाधारण सक्रियता ने एड्स के प्रसार पर कोई रोक लगाई हो, ऐसा नहीं लगता; पश्चिमी देशों में एड्स के प्रकोप में गिरावट आ रही है मगर गरीब देशों में प्रकोप तेज़ी से बढ़ रहा है। चूंकि एच.आई.वी. संक्रमित व्यक्ति कई तरह के मौकापरस्त संक्रमणों का शिकार हो जाता है इसलिए गरीब देशों की आबादी ज़्यादा खतरे में है क्योंकि वहां संक्रामक रोग ज़्यादा हैं। फिर किसी विकासशील देश की सरकार अपने देश में इस बीमारी के प्रकोप के बारे में सही आंकड़े कैसे हासिल करे? मसलन राष्ट्रीय एड्स नियंत्रण संगठन का अनुमान है कि भारत में 2001 में 39.7 लाख व्यक्ति एच.आई.वी. संक्रमित थे। मगर यू.एस. की गुप्तचर एजेंसियों का अनुमान है कि वर्ष 2010 में भारत में संक्रमित व्यक्तियों की संख्या 2.5 करोड़ होगी। यह वृद्धि दर किसी भी तर्क पर समझना मुश्किल है। यू.एस. गुप्तचर सूचनाओं को तो हम राजनीति से प्रेरित कहकर खारिज कर सकते हैं मगर अंतर्राष्ट्रीय संस्थाएं भी एक बड़े आंकड़े का ही समर्थन कर रही हैं। हकीकत यह है कि खून में एच.आई.वी. की एण्टीबॉडी नज़र आने के आधार पर पहचाने गए संक्रमित व्यक्तियों की संख्या और पक्की तौर पर एड्स मरीज़ प्रमाणित होकर अस्पताल में भर्ती व्यक्तियों की संख्या का कोई तालमेल हो, यह ज़रूरी नहीं है। यू.एन. एड्स की रिपोर्ट में फोसी चेतावनी देते हैं: "चीन, भारत तथा पूर्वी युरोप और मध्य एशिया" में एड्स बहुत तेज़ी से बढ़ रहा है। एड्स के प्रसार का पैटर्न अन्य संक्रामक रोगों से काफी अलग है।

एक रोचक संयोग यह है कि जहां एड्स प्रतिष्ठान वायरस और एड्स के बीच सम्बंध खोजे जाने की बीसवीं सालगिरह मना रहा है, वहीं पीटर डॉइसबर्ग ने जर्नल ऑफ बायोसाइन्स में वायरस और एड्स के बीच इस कार्य-कारक सम्बंध पर अपना हमला जारी रखा है। कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय, बर्कले के वायरस विशेषज्ञ डॉइसबर्ग लम्बे समय से यह कहते आ रहे हैं कि एच.आई.वी. एड्स पैदा नहीं करता। उनके मत को एड्स अनुसंधान की मुख्य धारा ने पूरी तरह खारिज कर दिया है

*एच.आई.वी.-एड्स (की खोज) की बीसवी सालगिरह के बावजूद आज तक यह खोज पूरी तरह अनुत्पादक रही है; आज तक एच.आई.वी. एड्स का कोई टीका नहीं बना है, न इसकी रोकथाम का कोई कारगर उपाय है और न ही किसी एड्स मरीज़ का इलाज हो पाया है, ये सब एक गलत परिकल्पना के लक्षण हैं।*

- पी. डॉइसबर्ग, जी.कोनलाइन और डी.रैस्निक, जर्नल ऑफ बायोसाइंस

*सबसे बड़ा और त्रासद प्रमाण तो यह है कि हिमोफिलीया के जिन मरीज़ों को अनजांचे रक्तदाताओं से प्राप्त क्लॉटिंग फैक्टर दिया गया, उनमें से कई में वायरस के खिलाफ एण्टीबॉडीज़ निर्मित हुईं और अंततः वे एड्स के शिकार हो गए। डॉइसबर्ग इन तथ्यों को अनदेखा करते हैं या उनकी गलती व्याख्या करते हैं।*

- क्रिस्टोफर विल्स, प्लेग्स, हार्पर कोलिन्स, 1996

मगर दक्षिण अफ्रीका के राष्ट्रपति थाबो म्बेकी ने उनका समर्थन किया है। राष्ट्रपति म्बेकी ने इस बात को चुनौती दी है कि दक्षिण अफ्रीका में एड्स की महामारी फैली है और एच.आई.वी. इसका कारण है। एड्स अनुसंधान की मुख्य धारा पर अपने ताज़ा प्रहार में डॉइसबर्ग ने दलील दी है कि रिक्रिएशन औषधियां और कुपोषण इस बीमारी के लिए अनुकूल धरातल देते हैं और वायरस-रोधी रसायन लाभ पहुंचाने की बजाय नुकसान कर सकते हैं। ऐसे सुझावों का कोई स्वागत करेगा इसकी संभावना बहुत कम है। खास तौर से बड़ी-बड़ी दवा कम्पनियां तो इस बात से सहमत होने से रहीं जिन्होंने 1987-2003 की अवधि में कम से कम 20 रिट्रोवायरस-रोधी दवाइयां पेटेंट कर ली हैं।

डॉइसबर्ग का सवाल है: "एड्स अनुसंधान में गैर-एच.आई.वी. परिकल्पनाओं की खोजबीन की छूट क्यों नहीं है?" उनका जवाब है, "अकादमिक शोध पर हावी बड़े-बड़े सरकार प्रायोजित शोध कार्यक्रमों के कारण... ये शोध कार्यक्रम ऐसे शोधकर्ताओं को बढ़ावा देते हैं जो ज़्यादा से ज़्यादा आंकड़े और कम से कम विवाद उत्पन्न करें।" डॉइसबर्ग का तर्क है कि "सहकर्मियों द्वारा समीक्षा का कार्पोरेट स्वरूप यह होगा कि छोटे-छोटे कार निर्माताओं के नवाचारों की समीक्षा का अधिकार जनरल मोटर्स और फोर्ड कम्पनियों को दे दिया जाए।"

वायरस जन्य बीमारियों के संदर्भ में आदर्श लक्ष्य तो एक टीके का निर्माण होगा। मगर एच.आई.वी. इस मामले में काफी सख्त साबित हुआ है। स्थिति यह है कि एड्स टीके के कार्यक्रमों को शंका की नज़र से देखने वालों की तादाद बढ़ती जा रही है। हाल ही में 'जिनेटिक इंजीनियरिंग की मदद से बनाए गए एच.आई.वी. की सतह पर पाए जाने वाले एक प्रोटीन जीपी 120' पर आधारित टीके की असफलता को शायद इसके आलोचक पहले ही भांप चुके थे। मगर एक खतरनाक घटनाक्रम में, इस टीके की निर्माता कम्पनी वैक्सजेन ने कहा है कि उसका टीका "अश्वेत, एशियाई और मिश्रित नस्ल के लोगों में काफी कारगर रहा है।" इस वक्तव्य का आशय यह निकलता है कि इस टीके को तीसरी दुनिया के देशों में आयात किया जाए। यदि सब कुछ ठीक ठाक चला तो विश्व बैंक और अंतर्राष्ट्रीय एजेंसियों की सहायता से अफ्रीका व एशिया में इस टीके के परीक्षण के कार्यक्रमों को गति मिलेगी। यानी गरीब लोग न सिर्फ इसमें गिनी पिग बनाए जाएंगे, अपितु इन देशों की सरकारों पर कर्ज़ का बोझ भी बढ़ेगा क्योंकि वे इन अत्यंत सीमित रूप से उपयोगी व महंगे टीकों को खरीदने के लिए कर्ज़ लेंगी।

एच.आई.वी. पर किए जा रहे अथक प्रयासों के बावजूद इसकी उत्पत्ति, विकास और इसका मानव रोगकारक के रूप में तब्दील होना आज भी वैज्ञानिक विवाद के विषय हैं। रॉबिन वाइस ने इस आम सहमति को रेखांकित किया है कि इस वायरस की दो सबसे प्रचलित किस्में, एच.आई.वी.-1 और एच.आई.वी.-2 करीब 60-70 वर्ष पूर्व चिम्पैंज़ियों और सूटी मेंगाबेस से इंसानों में आई हैं। वे आगे कहते हैं कि "एड्स होने पर मौकापरस्त संक्रमणों को बढ़ावा मिलता है और इन संक्रमणों की वजह से एड्स और गंभीर हो जाता है।" यह एक दुष्चक्र बन जाता है। उनकी दलील है कि "प्रतिरक्षा अभाव से ग्रस्त इतनी बड़ी आबादी शायद मेजबान-परजीवी सम्बंधों के इतिहास में अद्वितीय है।" यदि इतनी बड़ी आबादी रोगों के प्रति दुर्बल है तो जंतुओं से मनुष्यों में अन्य रोगकारकों के प्रवेश को बढ़ावा मिलेगा क्योंकि इस स्थिति में वायरसों, बैक्टीरिया और फफूंदों को अनुकूलित होने का मौका रहेगा। वाइस का निष्कर्ष है: "एड्स की विश्वव्यापी महामारी नए-नए रोगाणुओं के खतरे को और बढ़ा देगी; चाहे ये रोगाणु गलती से आएं या जानबूझकर छोड़े जाएं।" यदि आप "जैव-आतंकवाद" और एड्स का सम्बंध देख सकें, तो ज़ाहिर है कि इस बीमारी का विज्ञान व राजनीति निकट भविष्य में ठण्डे पड़ने वाले नहीं है। ***(स्रोत विशेष फीचर्स)***